ओ३म्

‘महर्षि दयानन्द सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग के आदर्श उदाहरण’

-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।

महर्षि दयानन्द ने अपनी शिक्षा वा विद्या पूरी होने पर वेद व सत्य मान्यताओं व परम्पराओं का प्रचार किया और इसके लिए अन्धविश्वासों, पाखण्ड, फलित ज्योतिष सहित सभी प्रकार की अविद्या व मिथ्या मान्यताओं का खण्डन किया। इसकी प्रेरणा उन्हें अपने विद्या गुरु प्रज्ञाचक्षु दण्डी स्वामी विरजानन्द सरस्वती, मथुरा से मिली थी। महर्षि दयानन्द देश भर में घूम कर अविद्या का नाश करने और विद्या की उन्नति करने हेतु वेदों का प्रचार करते थे। वह बंगाल पहुंचे तो वहां उन्हें ब्रह्म समाज के नेता श्री केशव चन्द्र सेन ने अपने उपदेशों और व्याख्यानों में संस्कृत के स्थान पर आर्यभाषा हिन्दी को अपनाने की प्रेरणा की। महर्षि दयानन्द इन दिनों वस्त्र धारण न कर कौपीन मात्र धारण करते थे। श्री केशव चन्द्र सेन जी ने स्वामी जी को वस्त्र धारण करने का सुझाव दिया जिसे उन्हों सहर्ष स्वीकार कर लिया। यद्यपि उन्हें वस्त्र धारण करने की इच्छा व आवश्यकता नहीं थी परन्तु उन्हें भ्रमण करते हुए स्त्री-पुरुषों से युक्त मनुष्य-समुदाय के सम्पर्क में आना पड़ता था। सम्भव था कि यदा-कदा वा अनजाने में कोई महिला भी उनसे वार्तालाप, अध्ययन व व्याख्यान में आ सकतीं थीं। अतः मर्यादाओं को ध्यान में रखते हुए उन्होंने ब्राह्म नेता सेन महाशय का यह सुझाव भी तत्काल स्वीकार कर लिया।

समय व्यतीत होता रहा और महर्षि दयानन्द काशी में प्रचार कर रहे थे। वहां डिपुटी कलेक्टर राजा जयकृष्ण दास आपके भक्त, अनुयायी व सहयोगी बन गये। आपने स्वामी जी को सुझाव दिया कि आपके श्रीमुख से उत्तम प्रवचन व व्याख्यान प्रस्तुत किये जाते हैं। आपके विचारों वा प्रवचनों से वही लोग लाभान्वित होते व हो सकते हैं जो कि उसमें उपस्थित होते हैं। जो लोग लाभान्वित होना चाहें परन्तु किन्हीं कारणों से वहां आ न सके, उन्हें आपके विचारों को जानने का लाभ प्राप्त नहीं हो पाता। कालान्तर में जब आप नहीं रहेंगे तब भी आपके विचार, मान्यताओं व वैदिक सिद्धान्तों से समकालिक व आने वाली सन्ततियां वैदिक ज्ञान से वंचित रहेंगी। यदि आप अपने विचारों, मान्यताओं व सिद्धान्तों का एक विस्तृत ग्रन्थ लिख दें तो इन सभी समस्याओं का निदान हो जायेगा। महर्षि दयानन्द इस उत्तम प्रस्ताव को सुनकर प्रसन्न हुए और उसे उन्होंने तत्काल स्वीकार कर लिया। अनुमान है कि उसके तीन माह के अन्दर ही सन् 1874 **में आदिम सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ तैयार कर दिया। यह सत्यार्थप्रकाश का प्रथम संस्करण था। आपने कुछ समय पहले ही आर्यभाषा हिन्दी सीखना आरम्भ किया था अतः भाषा के परिमार्जन की आवश्यकता थी। स्वामी जी ने जिन लेखकों को बोलकर यह ग्रन्थ लिखाया था, वह पौराणिक विचारों के थे। अतः पौराणिक मनोवृत्ति के कारण उन्होंने सत्यार्थप्रकाश में आपके आशय के विपरीत कुछ वचन डाल दिये थे, जिनका सुधार वा परिमार्जन अपेक्षित था। अतः ऋषि दयानन्द ने मृत्यु से पूर्व सन्** 1883 **में सत्यार्थप्रकाश का संशोधित संस्करण तैयार कर दिया जो उनकी मृत्यु के समय मुद्रणाधीन था।** 30 **अक्तूबर,** 1883 **को स्वामी की मृत्यु हो जाने पर यह ग्रन्थरत्न सन्** 1884 **में प्रकाशित हुआ। अतः सत्यार्थप्रकाश जैसे ग्रन्थ के लेखन की प्रेरणा भी उन्हें अपने भक्त**

व प्रशंसक राजा जयकृष्ण दास, मुरादाबाद से वाराणसी में मिली थी जिसे उन्होंने सहर्ष व सधन्यवाद स्वीकार किया था।

आर्यसमाज की स्थापना की प्रेरणा व प्रस्ताव महर्षि दयानन्द जी को मुम्बई में उनके अनेक भक्तों से मिला था। महर्षि दयानन्द को यह प्रस्ताव पसन्द आया था परन्तु उन्होंने वहां के लोगों को सावधान कर दिया था कि यदि आप आर्यसमाज के संचालन में सतर्क व सावधान नहीं रहे तो आगे चलकर गड़बड़ घोटाला हो सकता है। महर्षि दयानन्द ने मुम्बई में 10 अप्रैल, 1875 को आर्यसमाज की स्थापना तो कर दी और उसके बाद आर्यसमाज ने अनेक अभूतपूर्व कार्य भी किये। उनके आरम्भ किये गये कार्य आज भी जारी हैं, परन्तु आर्यसमाज का जो स्वरूप होना था वह आज देखने को नहीं मिल रहा है। आज आर्यसमाजों में वह व्यवस्थायें देखने को नहीं मिलती जिन्हें हम आदर्श व्यवस्थायें कहते हैं जबकि अन्य अनेक संस्थायें हमसे कहीं आगे चल रही हैं। ऐसी स्थिति में अन्य क्या सोचते हैं, यह जानना तो कठिन हैं परन्तु आर्यसमाज के सदस्य व ऋषि भक्त भी आर्यसमाज व इसकी सभाओं के क्रियाकलापों से पूर्णतया सन्तुष्ट नहीं अपितु दुःखी अवश्य हैं। लोकैषणा, स्वार्थ और पदलोलुपता के आन्तरिक शत्रुओं ने आर्यसमाज को भारी हानि पहुंचाई हैं और स्थिति वर्तमान में भी दुर्भाग्यपूर्ण है। इससे लगता है कि ऋषि की आर्यसमाज की स्थापना के अवसर पर दी गई चेतावनी सत्य सिद्ध हो रही है। यहां हमारा उद्देश्य यह बताना था कि आर्यसमाज की स्थापना भी ऋषि ने अपने सच्चे भक्तों के आग्रह पर उनके सहयोग से की थी।

सत्यार्थ प्रकाश की रचना के बाद महर्षि दयानन्द ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका सहित यजुर्वेद एवं ऋग्वेदभाष्य (सातवें मण्डल के अनेक सूक्तों तक), संस्कार विधि, आर्याभिविनय व अनेक लघु ग्रन्थों की रचनायें की। यह लेखन कार्य इनके महत्व व आवश्यकता को देखकर कुछ उद्देश्यों की पूर्ति के लिए स्व-विवेक से सम्पन्न किये गये। इसके लिए महर्षि स्वयं सावधान थे अतः इसके लिए उन्हें किसी व्यक्ति विशेष का कोई ऐसा प्रस्ताव नहीं मिला जैसा कि सत्यार्थप्रकाश के लेखन के लिए मिला था।

महर्षि दयानन्द जी का एक मुख्य कार्य अपने सर्वस्व की उत्तराधिकारिणी सभा, परोपकारिणी सभा, की स्थापना का था। इसे महर्षि दयानन्द ने अपनी मृत्यु से कुछ समय पूर्व उदयपुर में सम्पन्न किया था। यह उनकी अपनी मृत्यु विषयक निजी अनुभूतियों का परिणाम था। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें यह आभास हो गया था कि वह जो वेद प्रचार और अन्य मतों की मिथ्या मान्यताओं व अन्धविश्वासों की समीक्षा एवं खण्डन-मण्डन करते हैं, उसका उनके अपने जीवन के प्रति घातक परिणाम हो सकता है। ऐसी स्थिति में किसी प्रकार का कोई विवाद न हो, और उनके बाद भी उनके द्वारा स्थापित वा आरम्भ वेद प्रचार का कार्य सुचारु रूप से चलता रहे, इस पर विचार कर ही उन्होंने परोपकारिणी सभा की स्थापना की थी। महर्षि दयानन्द जी की मृत्यु वा महाप्रस्थान अजमेर में होने के कारण इस सभा का मुख्यालय वहीं बनाया गया जो आज भी सक्रिय रहकर अपने उद्देश्यों की पूर्ति में लगा हुआ है। यह कार्य भी उन्होंने स्वविवेक से किया जिससे आर्यसमाज को बहुत लाभ हुआ। यदि परोपकारिणी सभा की स्थापना न हुई होती तो आर्यसमाज के सामने कठिनाईयां आ सकती थीं।

महर्षि दयानन्द जी अपने वैदिक सिद्धान्तों व विचारों के पक्के थे। यदि उनका कोई भक्त व अनुयायी उनके हित का कोई प्रस्ताव करता था जिससे उनके जीवन को हानि होने की आशंका होती थी तो वह अपने अनुयायियों द्वारा किसी स्थान विशेष की यात्रा न करने के सुझाव को स्वीकार नहीं करते थे। ऐसा ही जोधपुर में वैदिक धर्म के प्रचार के

लिए जाते समय हुआ था। उनके भक्त शाहपुरा रियासत के आर्य नरेश नाहरसिंह जी व अन्य कुछ भक्तों को स्वामी जी के जोधपुर जाने पर उनके जीवन को हानि होने की आशंका थी। उन्होंने स्वामी जी को यात्रा न करने वा वहां के लोगों से सावधान रहने व प्रचार में संयम बरतने का सुझाव दिया था। स्वामी जी ने यात्रा न करने का सुझाव स्वीकार नहीं किया और अपने अनुयायियों को कहा कि यदि लोग उनकी उंगिलयों को बत्तियों की तरह जला भी दे तो भी वह सत्य को प्रकट करने से न चूकेंगे। जोघपुर प्रवास में जिस बात की आशंका थी वही हुई। जोधपुर में उन्हें विष दिया गया जिसके परिणामस्वरूप वह रूग्ण हो गये। उनके उपचार में भी अनियमिततायें हुई। एक ऐसे चिकित्सक अलीमर्दान ने उनका उपचार किया जो अनुमानतः उनके प्रति द्वेष रखता था। स्वामी जी को विष दिये जाने के पीछे किसी बड़े राजनीतिक षड़यन्त्र होने की सम्भावना से भी इनकार नहीं किया जा सकता। इसका कारण था कि वह देश की आजादी के समर्थक थे। उन्होंने अपने सत्यार्थप्रकाश व आर्याभिविनय आदि ग्रन्थों में विदेशी सरकार के विरोध में विचार प्रकट किये थे। वह जोधपुर महाराजा की वैश्यावृत्ति आदि अन्य मिथ्याचार के भी घोर आलोचक थे और उसका कठोर शब्दों में खण्डन करते थे। अतः उनके जीवन को नष्ट करने के किसी बड़े षडयन्त्र की सम्भावना से इनकार नहीं किया जा सकता। जो भी हो, जोधपुर में उन्हें विष दिया गया, उपचार में गड़बड़ी हुई जिसके कारण 30 अक्तूबर, सन् 1883 को अजमेर में दीपावली के दिन उन्होंने अपनी इच्छा से ईश्वरोपासना करते हुए प्राणायामपूर्वक श्वास छोड़ दिया और ब्रह्मलोक वा मोक्ष को प्राप्त हो गये।

स्वामी दयानन्द जी उच्च कोटि के योगी और महाभारत के बाद वेदों के असाधारण व अपूर्व विद्वान थे। उनका जीवन सत्य के ग्रहण करने का सर्वोत्तम उदाहरण हैं। उन्होंने उन्हें दिये जाने वाले किसी अच्छे प्रस्ताव की उपेक्षा नहीं की अपितु उन्हें स्वीकार कर सत्य के ग्रहण का प्रेरणाप्रद उदाहरण प्रस्तुत किया। उनका स्थापित किया आर्यसमाज अपनी आरम्भिक व उसके कुछ वर्षों बाद के यश व कीर्ति को अक्षुण्ण नहीं रख पा रहा है। ईश्वर कृपा करें कि महर्षि दयानन्द का स्थापित किया आर्यसमाज देश व संसार की आदर्श संस्था बन सके और उनके स्वप्न साकार हों। इसके लिए ऋषि के जीवन से प्रेरणा लेकर निजी लोकैषणा व स्वार्थों का त्याग करना होगा जो असम्भव तो नहीं परन्तु कठिन अवश्य है।

-मनमोहन कुमार आर्य
पताः 196 चुक्खूवाला-2
देहरादून-248001
फोनः09412985121